R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20
मूल्य-4 रुपये, वर्ष-20, अङ्क-8 अगस्त 2020 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

अगस्त का E - अंक

गर्भकल्याणक : शुद्धता का श्रद्धान

वैशाली की महारानी त्रिशलादेवी निद्रामग्न हैं। दिक्कुमारियाँ सेवा कर रही हैं। माता त्रिशला ने मंगलसूचक अति उत्तम सोलह स्वप्न देखे—1. एरावत हाथी, 2. उन्नत वृषभ, 3. शूरवीर सिंह, 4. सिंहासनयुक्त लक्ष्मी, 5. पुष्पमालायुगल, 6. चन्द्रमा, 7. बाल-सूर्य, 8. मीनयुगल, 9. कुम्भयुगल, 10. कमल-सरोवर, 11. निस्तरंग समुद्र, 12. रत्नजड़ित सिंहासन, 13. देव विमान, 14. नागेन्द्र-भवन, 15. रत्नराशि और 16. निर्धूम अग्नि। प्रातःकाल रानी ने महराजा सिद्धार्थ से स्वप्नों का फल पूछा। महाराज ने कहा—'हे प्रियकारिणी! तुम्हारी रत्नकुक्षी में तीर्थंकर का अवतरण हुआ है। वैशाली की प्रजा खुशी से झूम उठी। हमारे तारणहार प्रभु अवतरित हो रहे हैं... हमारे महान पुण्यप्रताप से तीर्थंकर का समागम होनेवाला है।

सोल-सोल सपने देखें हैंआज, फल बतलाओ जी महाराज!!

तीर्थधाम चिदायतन के बढ़ते चरण

वात्सल्य पर्व (रक्षाबन्धन कथा) के जीवन्त पात्र

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-20, अङ्क-8 (वी.नि.सं. 2546; वि.सं. 2076) अगस्त 2020

दशलक्षण के दशधर्मों का...

दशलक्षण के दश धर्मों का, उत्सव आया प्यारा।
धर्म ध्यान और पूजन पाठ से, ज्यों दिश हो उजियारा॥
बोलो पर्यूषण की जय, बोलो दशधर्मों की जय- 2॥टेक॥

उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच और संयम।
जो नर इन धर्मों को पाले, धन्य- धन्य हो जीवन।
इन दशधर्मों में है समाया, समयसार यह सारा॥
धर्मध्यान..... ॥1॥

तप और त्याग तो आभूषण है, इस मानव जीवन के।
आकिंचन और ब्रह्मचर्य है पूज्य है योगीजन के।
इन दश धर्मों के पालन से, सुधरे जीवन सारा॥
धर्मध्यान..... ॥2॥

मुनिदशा में उत्तम पालन, इन धर्मों का होता।
इन दशधर्मों से होती है परिणति निर्मल न्यारी।
हर अन्तर्मुहूर्त में मुनिवर, ध्याते शुद्धात्म न्यारा॥
धर्मध्यान..... ॥3॥

साभार :- मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
स्व. पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-
श्री कश्यप,
चेतन जैन, बडोदरा
हस्ते **श्री अजित जैन,**
बडोदरा (गुज०)

क्या - कहाँ

शुद्ध ज्ञान चेतना..... 5
आत्मा समीप है..... 12
शुद्ध जीवद्रव्य के नाम..... 20
मैं अपने चैतन्यसुख..... 26
आचार्यदेव परिचय शृंखला..... 29
समाचार दर्शन..... 30

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

दशलक्षण धर्म पर विशेष

शुद्ध ज्ञान चेतना परिणाम ही धर्म

'दंसण मूलो धम्मो' अर्थात् धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन ही प्रथम धर्म है और आत्मा के ज्ञान-चारित्रादि समस्त धर्मों का मूल है। सम्यग्दर्शन के बिना भगवान ने धर्म नहीं कहा है। सम्यग्दर्शन इस जगत में सर्वश्रेष्ठ कल्याणकारी वस्तु है। उसकी महिमा अपूर्व है।

हे भव्य! अनन्त काल में आत्मस्वरूप समझने का यह अवसर आया है। यदि सम्यग्दर्शन के द्वारा यथार्थ नहीं समझा तो कोई तुझे शरणभूत नहीं है। पुण्य-पाप रहित चैतन्यस्वभाव की प्रतीति के बिना तेरे त्यागादि सब व्यर्थ हैं, उनसे संसार के दु:खों का अन्त नहीं आयेगा।

आत्मस्वभाव की यथावत् प्रतीति करना सम्यग्दर्शन है और वह सम्यग्दर्शन ही अहिंसा, सत्य इत्यादि समस्त धर्मों का मूल है। वस्तुस्वभाव की प्रतीति द्वारा सम्यग्दर्शन प्रगट किये बिना किसी भी जीव के अहिंसा, सत्य इत्यादि धर्म कदापि नहीं हो सकते किन्तु अज्ञानता से मिथ्यात्वरूप महाहिंसा एवं असत्य का ही निरन्तर सेवन होता है। आत्मा को समझे बिना जो लौकिक सत्य है, वह भी परमार्थ से हिंसा ही है। मैं परजीवों का कुछ कर सकता हूँ — ऐसा मानना मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व ही सर्व पापों का मूल है। जिस जीव के सम्यग्दर्शन नहीं होता, उसके अन्य कोई भी धर्म नहीं होता।

सर्वज्ञदेव द्वारा उपदेशित धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। सर्वज्ञदेव की परम्परा से जो जिनमत प्रवर्तमान है, उसमें धर्म के स्वरूप का यथार्थ निरूपण है तथा निश्चय और व्यवहार - ऐसे दो प्रकार से धर्म का कथन किया है। धर्म की प्ररूपणा चार प्रकार से है - (१) वस्तुस्वभावरूप धर्म, (२) उत्तमक्षमादिक दशलक्षण धर्म, (३) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म, और (४) जीवरक्षारूप धर्म।

यदि वहाँ निश्चय से विचार किया जाए तो इन चारों प्रकारों में **शुद्ध चेतनारूप धर्म** एक ही प्रकार का है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है —

(१) वस्तुस्वभावरूप धर्म—दर्शन-ज्ञान-परिणाममयी चेतना, जीववस्तु का परमार्थस्वभाव है। जब उस चेतना के परिणाम सर्व विकाररहित

शुद्धचेतनारूप परिणमित हों, तब वह धर्म है। इस प्रकार 'वस्तु का स्वभाव धर्म' — ऐसा कहने से शुद्धचेतनारूप धर्म सिद्ध होता है।

यहाँ पर शुद्धचेतना परिणाम को ही धर्म कहा है। जितनी परजीव की दया, दान, पूजा, व्रत, भक्ति की शुभ अथवा हिंसादि की अशुभ वृत्तियाँ उठती हैं, वे सब निश्चय से अधर्मभाव हैं। देहादि की क्रिया तो आत्मा कर ही नहीं सकता किन्तु शुभपरिणाम करे, उसमें भी धर्म नहीं है। धर्म तो शुद्धचेतनामय है। जो पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वह मेरा कर्तव्य नहीं है किन्तु उन विकारी भावों का भी मैं ज्ञाता ही हूँ। ज्ञाता-दृष्टापना ही मेरा स्वरूप है — ऐसी प्रतीतिपूर्वक ज्ञान-दर्शनमय चेतना की जो शुद्धपर्याय है, वही **धर्म** है। धर्म, द्रव्य अथवा गुण नहीं, किन्तु शुद्धपर्याय है।

धर्म के चार प्रकार के कथन में शुद्धपर्याय का वास्तव में एक ही प्रकार है। जितने अंश में चेतना निर्विकाररूप से परिणमित होती है, उतने अंश में धर्म है और जितने अंश में पुण्य-पाप के विकाररूप परिणमित होती है, उतना अधर्म है। शरीर की क्रिया में धर्म माननेवाला तो बिल्कुल बहिर्दृष्टि है, मिथ्यादृष्टि है। यहाँ पर तो पुण्य में धर्म माननेवाला भी मिथ्यादृष्टि है। पुण्य और देह की क्रिया मेरा स्वरूप नहीं है; ज्ञाता-दृष्टापना ही मेरा वास्तविक स्वरूप है - ऐसा जाननेवाले ज्ञानी के भी निचली दशा में पुण्य -पाप के परिणाम होते अवश्य हैं किन्तु वे ऐसा जानते हैं कि पुण्य-पाप के विकार से रहित शुद्धचेतना परिणति में जितनी स्थिरता करूँ, उतना ही धर्म है और चेतना परिणति जितनी बहिर्मुख हो, वह सब अधर्मभाव है। जो निर्मलपर्याय प्रगट हुई, वही धर्म है।

वास्तव में तो धर्म, पर्याय है किन्तु शुद्धपर्याय का द्रव्य के साथ अभेदत्व होने से, अभेदरूप से वस्तु के स्वभाव को ही धर्म कहा है। प्रथम पुण्य-पाप रहित स्वभाव की प्रतीति होने पर जब सम्यग्दर्शन धर्म प्रगट होता है, तब चेतना के परिणाम अंशतः शुद्ध और अंशतः अशुद्ध होते हैं। ज्ञानी, शुद्धपरिणाम में ही धर्म समझते हैं, इसलिए वे अशुद्धपरिणाम का स्वभाव में स्वीकार नहीं करते; इसी कारण पुण्य-पाप रहित स्वभाव की स्थिरता द्वारा क्रमशः चारित्र की पूर्णता करते हैं। जब पूर्ण शुद्धचेतना परिणाम प्रगट होते हैं, उस समय केवलज्ञान प्रगट होता है और पुण्य-पाप का अभाव होता है।

'शुद्धचेतनारूप धर्म' कहने से ही यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान-दर्शन के अतिरिक्त आत्मा अन्य कुछ नहीं कर सकता। ज्ञान-दर्शन के अतिरिक्त आत्मा का अन्य कुछ भी कर्तव्य मानना अधर्मभाव है। मात्र ज्ञान-दर्शनमय स्वभाव को मानने पर उसमें पर का करने की बात ही कहाँ आयी ? अरे, ज्ञान में शुभविकल्प भी कहाँ आया ? चेतना का स्वभाव ही विकल्परहित ज्ञाता-दृष्टा है और वह विकाररहित चेतना ही धर्म है।

(२) उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्म — आत्मा क्रोधादि कषायरूप परिणमित न हो और अपने स्वभाव में स्थिर रहे, यही उत्तम क्षमादिरूप धर्म है; इस प्रकार उत्तम क्षमादिरूप धर्म कहने से भी शुद्धचेतना के परिणामरूप धर्म ही सिद्ध होता है क्योंकि उसमें चेतना के परिणामों को पुण्य-पाप से छुड़ाकर ज्ञानस्वभाव में ही स्थिर करना कहा है। मैं ज्ञानस्वरूप ज्ञाता हूँ; मेरे ज्ञान में कोई परद्रव्य इष्ट-अनिष्ट नहीं है, मेरे ज्ञान के लिए कोई शत्रु अथवा मित्र नहीं है, दुर्जन या सज्जन नहीं है — ऐसे भानपूर्वक स्वरूप की स्थिरता हो, वहीं उत्तम क्षमा हो सकती है।

'अपने को सहन करना सीखना चाहिए' इस प्रकार परद्रव्यों को सहन करना मानना और स्वभाव के भान बिना क्षमा रखना, उत्तम क्षमा नहीं है। मेरा स्वभाव जानने का है, मेरा ज्ञान सर्व पदार्थों को समरूप से जाननेवाला है, जानने में ऐसी वृत्ति करना कि 'यह अच्छा है और यह बुरा है' — वह ज्ञान का स्वरूप नहीं है। ऐसे भानपूर्वक मान-अपमान की वृत्ति को तोड़कर स्वरूप में स्थिर होना ही शुद्धचेतनारूप धर्म है।

यहाँ पर मुख्यत: मुनि के लक्ष्य से बात की है, तथापि सम्यग्दृष्टि के भी अंशत: शुद्धचेतना होती है, प्रतीतिरूप से उनके समस्त द्रव्यों के प्रति क्षमा प्रवर्तमान है। परलक्ष्य से क्रोध या क्षमा की अल्पवृत्ति हो जाए, उसे ज्ञानी अपने स्वभाव में स्वीकार नहीं करते; इस कारण उनके निरन्तर अंशत: उत्तम क्षमारूप धर्म प्रवर्तमान रहता है।

आत्मस्वभाव के भान बिना द्रव्यलिङ्गी जैन निर्ग्रन्थ मुनि हो और कोई उसके शरीर को जीवित जला डालें, तब भी क्रोध की वृत्ति न करे; तथापि उसके

उत्तम क्षमा नहीं है क्योंकि क्षमा की शुभवृत्ति को वह अपना स्वरूप मानता है, उसे शुद्धचेतना परिणामों का पता नहीं है। शुभपरिणामों से भी शुद्धचेतना भिन्न है — ऐसे भान बिना धर्म नहीं हो सकता। ज्ञानस्वरूप में किसी भी राग का अंश नहीं है; अशुभ या शुभ दोनों प्रकार के रागरहित शुद्धचेतना ही धर्म है।

शुभभाव विकार है, उसे धर्म में सहायक माननेवाले को मिथ्यात्व का महापाप है, पुण्यभाव में भी लोभकषाय की मुख्यता है, वह पुण्यभाव अशुद्धचेतना है; शुद्धचेतनारूप धर्म तो एक ही प्रकार का है, उसमें शुभाशुभविकल्पों को भी अवकाश नहीं है।

इस प्रकार वस्तुस्वरूप धर्म और उत्तमक्षमादिरूप धर्म में शुद्धचेतना के परिणामरूप धर्म एक ही प्रकार सिद्ध हुआ।

(३) दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म — सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में मात्र शुद्ध चेतना के ही परिणाम हैं। इसमें, दर्शन-ज्ञान-चारित्र में भी शुद्ध चेतनारूप धर्म ही सिद्ध होता है। शुद्ध ज्ञानचेतना में पुण्य-पाप नहीं हैं, शरीरादि की क्रिया नहीं है; मात्र शुद्धस्वभाव है, वही धर्म है। इस प्रकार दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म कहने से भी शुद्ध चैतन्यत्व सिद्ध हुआ।

(४) जीवदयारूप धर्म — 'जीवदया' के नाम से लोग शुभराग में धर्म मान रहे हैं किन्तु जीवदया के यथार्थस्वरूप को नहीं समझते। क्रोधादि कषायों के वश होकर अपनी अथवा परजीव की हिंसा का भाव न करना, जीवदया है। सबसे महान क्रोध मिथ्यात्व है और वही वास्तविक जीवहिंसा है। मिथ्यात्व का त्याग किये बिना कभी भी जीवहिंसा नहीं रुक सकती।

स्व-जीव की हिंसा न करना ही मुख्य जीवदया है और जब स्वत: क्रोधादि द्वारा स्व-जीव की हिंसा नहीं की, तब क्रोध का अभाव होने के कारण परजीव को मारने का भाव भी नहीं आया, इसमें परजीव की दया भी आ गयी किन्तु स्वजीव की दया कब हो सकती है? जो जीव पुण्य से धर्म मानता है, वह विकारभाव के द्वारा स्वभाव की हिंसा करता है। मेरा शुद्धस्वरूप पुण्य-पाप रहित है - ऐसी पहिचान करने के पश्चात् दया की शुभवृत्ति को भी छोड़कर स्वरूप में स्थिर हो गया और शुद्ध ज्ञान-चेतना के अनुभव में लीन हुआ, वही

जीवदया धर्म है। इसलिए इसमें भी जो चेतना के शुद्धपरिणाम हैं, वही धर्म है — ऐसा आया है।

कोई जीव परजीव को वास्तव में न तो मार सकता है, न जीवित कर सकता है; मात्र भाव करता है। किसी जीव को दु:ख न देना, उसमें स्वयं भी सम्मिलित है। अब स्वयं को भी दु:खी नहीं करना, यथार्थ दया है। अशुभपरिणामों के समय जीव स्वयं तीव्र दु:खी होता है और दयादि के शुभपरिणामों के समय भी जीव को आकुलता का ही वेदन होने से वह दु:खी है; इसलिए अशुभ और शुभ दोनों भावों से जीव को बचाना अर्थात् मात्र शुभाशुभरहित ज्ञानस्वभावरूप दशा करना ही जीवदया है।

जो जीव शुद्ध ज्ञानचेतना द्वारा स्वरूप में एकाग्र हुआ, उस जीव के अशुभभाव होते ही नहीं; इसलिए वहाँ स्वयं ही परजीव की दया का पालन होता है। यदि परजीव की दया पालन करने के शुभराग में धर्म हो तो सिद्धदशा में भी परजीव की दया का राग होना चाहिए ? किन्तु वहाँ ऐसा राग नहीं है; इससे सिद्ध होता है कि शुभराग धर्म नहीं है; निश्चय से अधर्म है, हिंसा है।

प्रथम, सम्यग्दर्शन द्वारा स्वभाव को पहिचानने पर श्रद्धा की अपेक्षा से अहिंसकपना प्रगट होता है क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव पुण्य-पाप के भावों को अपने स्वभाव का नहीं मानते; इस प्रकार मान्यता में अपने स्वभाव को पुण्य-पाप से बचाकर रखते हैं, इससे उनके सच्ची जीवदया है। अज्ञानी जीव अपने को क्षणिक पुण्य-पाप जितना ही मानकर त्रिकाल विकाररहित स्वभाव का नाश करता है, वही हिंसा है।

पुनश्च, 'जीवदया' — ऐसा कहा जाता है। कहीं भी 'शरीरदया' नहीं कहा जाता क्योंकि शरीर, जीव नहीं है। लोग शरीर की क्रिया से माप करते हैं, वह ठीक नहीं है। जीव तो शरीर से भिन्न निरन्तर चैतन्यस्वरूप है, उसे श्रद्धा-ज्ञान-स्थिरता में ही स्थिर रखना और विकार में न जाने देना, जीवरक्षा है।

'परजीव की रक्षा करूँ' — ऐसी दया की वृत्ति भी परमार्थ से जीवहिंसा ही है, इस प्रकार प्रथम श्रद्धा में स्वीकार करना चाहिए। यद्यपि ऐसी मान्यता होने के पश्चात् भी अस्थिरता के कारण शुभविकल्प आते हैं किन्तु वे धर्म नहीं हैं।

मिथ्यादृष्टि जीव, जीवरक्षा के शुभभाव के समय ऐसा मानता है कि मैं

परजीव को बचा सकता हूँ तथा इस शुभभाव से मुझे धर्म होगा। सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा जीव यदि युद्धादि कर रहा हो और उसके अशुभपरिणाम हों तो भी उसे अन्तरङ्ग में भान होता है कि यह युद्ध की या देह की क्रिया मेरी नहीं है; अशुभभाव मेरे पुरुषार्थ के दोष से होते हैं, उतनी हिंसा है किन्तु वास्तव में वह मेरा यथार्थस्वरूप नहीं है। उस समय इन दोनों जीवों में से मिथ्यादृष्टि जीव के अनन्त हिंसा प्रवर्तमान है और सम्यग्दृष्टि जीव के अल्प हिंसा है। अरे! श्रद्धा की अपेक्षा से तो युद्ध के समय भी वह अहिंसक है क्योंकि उसके अंशत: शुद्धचेतना परिणाम प्रवर्तमान हैं।

जितने अंश में शुद्ध चेतनापरिणाम प्रवर्तमान हों, उतने अंश में युद्ध के समय भी जीवदया वर्त रही है और मिथ्यादृष्टि जीव के किञ्चित् भी शुद्धचेतना परिणाम नहीं होने से उसे जीवरक्षा के भाव के समय भी जीवहिंसा ही है। यह माप तो अन्तरङ्ग शुद्धचेतना परिणामों से है। शरीर की क्रिया तो दूर रही किन्तु पुण्य-पाप के भावों पर से भी जीवदयारूपी धर्म का यथार्थ माप नहीं होता।

इस प्रकार धर्म के चारों लक्षणों में अभेदरूप से शुद्धचेतना परिणाम ही धर्म है।

परमार्थ धर्म अर्थात् निश्चय धर्म या सच्चा धर्म तो एक ही प्रकार का है, फिर उसे जीवदया कहो अथवा वस्तुस्वभाव कहो; उसमें मात्र शुद्ध चेतना परिणाम ही धर्म है। 'शुद्ध चेतना को धर्म कहते हैं और कभी-कभी शुभभाव को भी धर्म कहते हैं' - ऐसा स्वरूप निश्चय धर्म का नहीं है। निश्चय धर्म तो एक ही प्रकार का है।

'मैं आत्मा कौन हूँ' — इस भान के बिना शुद्ध चेतना कहाँ से लायेगा? बाह्य में जीव मरें या जिएँ, उनकी संख्या से हिंसा अथवा दया का वास्तविक माप नहीं होता। सम्यग्दर्शन होने पर अहिंसा का प्रारम्भ होता है, तथापि सम्यग्दृष्टि के भी अस्थिरता के कारण जितनी रागादिक वृत्ति उत्पन्न होती है, उतनी चारित्र अपेक्षा से हिंसा है किन्तु जो आत्मभान प्रवर्तमान है, उतनी जीवदया है। इस प्रकार साधक के आंशिक अहिंसा और आंशिक हिंसा — दोनों साथ में ही होती हैं। अज्ञानियों के एकान्त जीवहिंसा ही है; पूर्ण वीतरागी ज्ञानी के सम्पूर्ण अहिंसा है। वस्तुस्वभावरूप जैनशासन में त्रिकाल धर्म का ऐसा ही स्वरूप है।

अपने भावों में अनन्त परद्रव्यों का स्वामित्व या अभिमान न होने देना

और अपने ज्ञानमात्र स्वरूप को पुण्य-पाप से भिन्नरूप श्रद्धा में स्थिर रखना — ऐसी यथार्थ जीवदया है, उसका जगत् को माहात्म्य नहीं है और शुभराग का माहात्म्य है। जिसने पुण्य के विकल्प से अपना लाभ माना है, उसने पुण्य को अपना स्वरूप ही माना है क्योंकि जिसे अपना स्वरूप मानता है, उसी से अपने को लाभ मानता है।

जिस जीव ने पुण्य को अपना स्वरूप माना, उसने जगत् के समस्त आत्माओं के स्वभाव को भी पुण्यरूप माना। इस प्रकार जगत् के समस्त आत्माओं को विकारी माना है। उसने अपनी मान्यता में विश्व के सर्व जीवों की हिंसा की है। जीवहिंसा के इस पाप का जगत् को ज्ञान नहीं है।

महान हिंसादि के अशुभभाव करने की तो बात ही नहीं है क्योंकि अशुभभावों में तो तीव्र आकुलता है किन्तु जो शुभभाव होते हैं, उनमें भी आकुलता ही है। इन दोनों आकुलताओं में हिंसा है; उससे रहित निराकुलता और ज्ञान-चेतना का जितना अनुभव है, उतनी ही जीवरक्षा है। अपने शुद्ध जीवपरिणाम की रक्षा करना, उसका हनन न होने देना ही शुद्ध चेतना परिणामरूप धर्म है। शुद्ध चेतना परिणाम के बिना दया अथवा दर्शन-ज्ञान-चारित्र एवं क्षमा इत्यादि कोई धर्म सच्चा होता ही नहीं।

'परजीव को बचाने का भाव करना, अपना कर्तव्य है' — यह मान्यता मिथ्या है। परजीव के बचाने का भाव तो विकार है, तो क्या विकार करना आत्मा का कर्तव्य है ? ज्ञानी तो जानते हैं कि मात्र ज्ञातारूप से स्वभाव में स्थिर रहना हमारा कर्तव्य है। जितना मैं अपने ज्ञातास्वभावरूप से स्थिर रहूँ, उतना धर्म है और ज्ञातापने के अतिरिक्त अन्य किसी वृत्ति की उत्पत्ति होना मेरा कर्तव्य नहीं है; इस प्रकार ज्ञानी जीव ज्ञाता-दृष्टारूप से अपने चैतन्यपरिणाम को स्थिर रखता है, वही धर्म है।

उक्त सम्पूर्ण कथन का सार यह है कि वस्तुस्वभावरूप धर्म, उत्तमक्षमादि दशलक्षण धर्म, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म और जीवरक्षारूप धर्म—इन चार प्रकारों की प्ररूपणा में शुद्ध चेतना परिणाममय एक ही प्रकार का धर्म है—ऐसा बताया है। तात्पर्य यह है कि निश्चय धर्म एक ही प्रकार का है।●

[नियमसार गाथा 127, कलश 212 पर पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचन]

आत्मा समीप है

धर्मी को एक भी पर्याय में आत्मा दूर नहीं है

अहा, शुद्ध चैतन्यस्वभावी मेरा आत्मा! उसमें मुझे शुद्ध ज्ञान-आनन्द का ही परिचय है, उसमें भव का परिचय नहीं है, भव के कारणरूप किन्हीं विभावों के साथ मेरे चेतनस्वभाव का परिचय नहीं है, सम्बन्ध नहीं है। मेरी आत्मानुभूति में मेरी शान्ति और आनन्द के अनन्तभाव भरे हुए हैं, परन्तु रागादि परभाव तो उसमें किंचित् भी नहीं हैं। अन्तर में आत्मा के ऐसे स्वभाव का अभ्यास करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र एवं मोक्षरूप परिणमन होता है; परन्तु भवरूप परिणमन नहीं होता। अपने सम्यक्त्वादि स्वभावरूप परिणमित होना, यह तो जीव का स्वभाव ही है; उस शुद्ध परिणाम में आत्मा स्वयं समीप है, उसमें रागादि की निकटता नहीं है, रागादि तो उससे दूर हैं और शुद्धस्वभाव उसमें अत्यन्त निकट (तन्मय) है।

अरे जीव! शान्त होकर अपने स्वतत्त्व को अन्तर में देख तो सही, कैसा है तेरा चैतन्यतत्त्व! अपने चैतन्यतत्त्व के अनुभव में तुझे भवरहित चैतन्यसुख दृष्टिगोचर होगा, भव और भव के कारणरूप समस्त विभाव तो चैतन्य से अत्यन्त दूर हो गये हैं—पृथक् हो गये हैं।

अहा, जो पर्याय अन्तर में चैतन्यस्वभाव के निकट आयी, वह पर्याय राग के निकट क्यों जायेगी? जिस पर्याय में मोक्षसुख का अनुभव हुआ, उस पर्याय में भवदु:ख का परिचय क्यों रहेगा? धर्मी कहता है कि मेरे आत्मा में भव का परिचय नहीं है; चिदानन्दस्वभाव के परिचय में समतारूप सामायिक है अर्थात् मोक्षमार्ग है, शान्ति का वेदन है।

चैतन्य जिसका चमत्कार है, अनन्त चैतन्यभावों से जो गम्भीर है, ऐसा

मेरा परमतत्त्व स्वानुभूति में प्रकाशित हुआ है, वह जयवन्त है; रागादि भावों का परिचय उसमें से छूट गया है।

हे जीव! चेतना को जागृत करके ऐसा पुरुषार्थ कर कि एक क्षण में चिदानन्दस्वभाव में उतर जाये और समस्त परभावों से पृथक् हो जाये। तेरा स्वभाव शुद्धतारूप परिणमित होने का है और उसका यह अवसर है। शुद्धतत्त्व को जानने से शुद्धपरिणमन होता है, वह सामायिक है, उसमें आत्मा की प्राप्ति है। अपनी टंकोत्कीर्ण निज महिमा में लीन ऐसे शुद्धतत्त्व को सम्यग्दृष्टि साक्षात् जानता है। तीर्थंकर-गणधर-मुनिवर-सन्तों के हृदय में जो सदा स्थित है, ऐसा परम महिमावन्त चैतन्यतत्त्व मुझे भी अपनी अनुभूति में गोचर होता है, ऐसा सम्यग्दृष्टि अनुभव करता है। स्वयं अपने को प्रत्यक्ष हो, ऐसा ही मेरा स्वभाव है। ऐसे अपने आत्मा को एक ओर रख देने से कभी कल्याण नहीं हो सकता। अपना महान तत्त्व कैसा है, उसे ज्ञान में अत्यन्त समीप लाकर, स्वानुभवगोचर करके अपूर्व कल्याण होता है। आत्मा कोई अगोचर वस्तु नहीं है, सम्यग्दृष्टि के स्वानुभव में वह आनन्दसहित गोचर होता है।

धर्मात्मा के सर्व निर्मलभावों में अपना शुद्ध आत्मा ही संनिष्ठ है; स्वपर्याय में आत्मा ही सम्यक्रूप से स्थित है; पर्याय-पर्याय में आत्मा ही उसे समीप वर्तता है। उसकी एक भी पर्याय में आत्मा दूर नहीं है परन्तु सर्व पर्यायों में आत्मा समीप ही है। रागादिभाव उससे दूर हैं-भिन्न हैं। अरे जीव! तेरा आत्मा तुझमें ही अत्यन्त निकट है, तथापि उसे दूर समझकर तूने राग से मित्रता की है; परन्तु राग तो तेरे स्वभाव से दूर है। चेतन में आत्मा की ही समीपता है और रागादिकभाव दूर हैं; इसलिए अन्तरंगदृष्टि द्वारा आत्मा को ही समीप कर। परिणाम को आत्मा में तन्मय करके आनन्द का अनुभव कर। ऐसा अनुभव करने पर सर्व परभाव लोप हो जायेंगे और भगवान आत्मा परम आनन्दसहित प्रगट होगा।

* 'चेतनावंत' ज्ञानी.... उसकी सच्ची भक्ति *

धर्मात्मा को एक भी पर्याय में आत्मा दूर नहीं है; उसने आत्मा के साथ परिणति की डोरी बाँधी है और राग के साथ सम्बन्ध तोड़ दिया है। उसकी चेतना की एक भी पर्याय ऐसी नहीं है कि राग में तन्मय हो, उसकी चेतना राग से सर्वथा भिन्न चैतन्यभावरूप ही वर्तती है।—ऐसी चेतना को पहिचाने—जाने, तब धर्मी को पहिचाना कहा जाता है। जिस प्रकार केवलज्ञानी भगवान की ज्ञानचेतना राग से सर्वथा भिन्न है, उसी प्रकार साधक धर्मात्मा की जो ज्ञानचेतना है, वह भी राग से सर्वथा भिन्न है, परभाव के किसी भी कण को वह अपने में नहीं मिलाती; ऐसी चेतनास्वरूप से अपना स्पष्ट वेदन हो, तब भेदज्ञान हुआ कहा जाता है तथा वह आत्मा ज्ञानचेतनास्वरूप होकर मोक्षमार्गी हुआ कहा जाता है। ज्ञानी की पहिचान राग द्वारा नहीं, परन्तु ज्ञानचेतना द्वारा ज्ञानी की पहिचान होती है। ऐसी पहिचान करे, तब ज्ञानी को सच्ची पहिचान और सम्यग्दर्शनादि होते हैं।

* शान्तरस के कुण्ड में स्नान करने से भवरोग का नाश होता है *

आत्मा अपने परमानन्दरूपी अद्वितीय अमृत से भरपूर है। ऐसे आत्मा को आनन्दभक्ति से परिपूर्ण परम शान्तरसरूपी जल द्वारा स्नान कराओ! अन्य कल्पना-जाल का क्या काम है ?

अहा, मेरे भगवान ने जैसे आत्मा का अनुभव करके प्रगट किया, वैसा ही आत्मा मैं हूँ—इस प्रकार अन्तर में स्वसन्मुख अनुभूति के आनन्दमय फव्वारे से आत्मा को स्नान कराओ, आत्मा को प्रशमरस में डुबाओ। आत्मा चैतन्यसमुद्र है, वह स्वयं अपने में ही मग्न होकर अपने शान्त चैतन्यरस का पान करता है; जिस प्रकार शारीरिक रोग को दूर करने के लिये लोग राजगृही आदि के गरम पानी के कुण्डों में स्नान करते हैं, उसी प्रकार हे जीव! आत्मा के कषायादि भवरोग को मिटाने के लिये तू अपने अन्तर में भरे हुए परम शान्त चैतन्यकुण्ड में स्नान कर... तेरे सब रोग दूर हो जायेंगे।

धर्मात्मा जानता है कि मैं अपनी निर्मल पर्याय के समीप जा रहा हूँ... राग से दूर होता हुआ अपनी चेतना परिणति में एकाग्र होता हूँ।

श्रीगुरु का उपदेश भी यही है कि—अपने परिणाम में तू अपने चैतन्यस्वभावी आत्मा को ही मुख्य रख; उसी को समीप रख और उसके अतिरिक्त अन्य सबको दूर कर दे। अपने में शुद्ध आत्मतत्त्व की आनन्दमय अनुभूति हुई, वही परम गुरुओं का प्रसाद है। अहो, परम गुरुओं ने प्रसन्न होकर हमें ऐसे शुद्धात्मा का प्रसाद दिया... उसके अनुग्रह द्वारा हमें जो शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश मिला, उससे हमें स्वसंवेदनरूप आत्मवैभव प्रगट हुआ।

* भावी तीर्थाधिनाथ का उदाहरण देकर समझाते हैं *

अहा, जो भावी तीर्थाधिनाथ हैं, भवभय को हरनेवाले हैं और रागरहित होने से अभिराम हैं—सुन्दर हैं, ऐसे शुद्धदृष्टिवन्त भावी तीर्थाधिनाथ को अपने समस्त स्वसन्मुख परिणाम में अपना शुद्ध आत्मा ही ऊर्ध्व है, वही मुख्य है, वही समीप है, इसलिए उन्हें सहज समता साक्षात् वर्तती है। भावी तीर्थनायक के उत्कृष्ट उदाहरण द्वारा सर्व सम्यग्दृष्टि जीवों की शुद्धदृष्टि में कैसा शुद्धात्मा वर्तता है, वह समझाया है। धर्मात्मा को समस्त परिणमन से अपना निरंजन कारणपरमात्मा ही सदा निकट है। परमगुरु के प्रसाद से ऐसे कारणपरमात्मा को स्वयं प्राप्त किया है—अनुभव में लिया है। श्रीगुरु के उपदेश में जैसा शुद्ध आत्मस्वरूप बतलाया, वैसा समझकर स्वयं प्रगट किया अर्थात् निर्मल पर्याय प्रगट करके उसमें स्वयं स्थित हुआ, रागादि समस्त परभावों से पृथक् हुआ, दूर हुआ। इस प्रकार भावी जिन-भगवन्त निजस्वभाव के समीप और परभावों से पराङ्मुख हुए, उन्हें सदा वीतरागी समताभावरूप स्थिर सामायिक है; सामायिकभावरूप अपनी निर्मल दशा में वह आत्मा सदा स्थिर रहता है; इसलिए भगवान के शासन में उस आत्मा की ही सामायिक कही है।

जहाँ अपना शुद्धात्मा समीप नहीं है, शुद्धात्मा जिसकी दृष्टि में नहीं आया है, वह आत्मा को दूर रखकर आत्मा को भूलकर चाहे जो करे, परन्तु उसे शुद्धता नहीं होती, सामायिक नहीं होती, चारित्र नहीं होता, श्रद्धा-ज्ञान भी नहीं होते;—एक भी धर्म उसे नहीं होता। आत्मा को अपना स्वज्ञेय बनाये बिना सब व्यर्थ है, उसके बिना बाह्य जानकारी या शुभ आचरण, वे कोई शान्ति प्रदान नहीं करेंगे। शान्ति देनेवाला अपना आत्मा है, उसके निकट तो वह जाता नहीं है तो उसे शान्ति कहाँ से मिलेगी ?

व्यवहार के परिणाम के समय भी धर्मी को उसमें निकटता-तन्मयता नहीं है, उस समय उसकी चेतना तो उस व्यवहार के राग से दूर ही वर्तती है और अपने शुद्ध परमतत्त्व के समीप ही वर्तती है। धर्मी की चेतना में अपना स्वभाव ही समीप है और राग दूर है—पृथक् है। जिसे चैतन्य की निकटता हुई है—शुद्ध परिणति में भगवान आत्मा अनुभव में आया है—ऐसे शुद्धदृष्टिवन्त जीव को ही व्यवहार संयमादि सच्चे होते हैं। शुद्ध आत्मा जिसकी दृष्टि में नहीं वर्तता और मात्र राग ही जिसकी परिणति में तन्मय वर्तता है—ऐसे अज्ञानी को तो व्यवहार भी सच्चा नहीं होता। उसे जो अपना आत्मा दूर है, अर्थात् अनुभूति में नहीं आता।

* मेरा आत्मा मुझे दूर नहीं है *

अरे, मैं स्वयं चैतन्यप्रभु.... मैं अपने से दूर क्यों होऊँगा ? आत्मा स्वयं अपने समीप ही है, स्वयं अपने स्वभाव में ही सत् है।—ऐसे आत्मा में जिसके परिणाम तन्मय हैं, उसी को धर्म है; जिसके परिणाम अपने आत्मा में तन्मय नहीं हैं अर्थात् जो आत्मा राग से भिन्न चेतनारूप परिणमित नहीं हुआ है और रागादि परभाव में तन्मयभाव से वर्तता है, उसे धर्म नहीं है, शान्ति नहीं है, सामायिक नहीं है। धर्मी तो कहता है कि मेरी पर्याय-पर्याय में मेरे चैतन्यप्रभु का अमृत बरस रहा है, चैतन्यरस के समुद्र में ही मेरी सब पर्यायें मग्न हैं, मेरी कोई पर्याय राग में तन्मय नहीं है। मेरा आत्मा राग से

भिन्न चेतनाभावरूप ही परिणमित हो रहा है।—इस प्रकार जिसने चैतन्यप्रभु को समीप रखा और जो स्वयं चैतन्यप्रभु के समीप गई, उस पर्याय में राग रह नहीं सकता, वह पर्याय राग से पृथक् हो गई; इसलिए वीतरागभाव से वह सुन्दर सुशोभित हुई। ऐसी शुद्ध आत्मदृष्टिवाले जीव अभिराम हैं —सुन्दर हैं—मनोहर हैं। अहा, तीर्थंकर होनेवाले आत्मा ऐसी शुद्धात्मदृष्टि द्वारा मनोहर हैं, भवभय को हरनेवाले हैं।

जहाँ आत्मा की समीपता है, आत्मा में एकाग्रता है, वहीं सच्ची सामायिक है। जहाँ आत्मा नहीं है, वहाँ सामायिक कैसी? जिस परिणाम में अपने शुद्ध आत्मा की अनुभूति नहीं है उसमें सामायिक कैसी? उसमें वीतरागता कैसी? उसमें सुख कैसा? उसमें धर्म कैसा? धर्मी को अपनी समस्त पर्यायों में, ज्ञान में-श्रद्धा में-चारित्र में-आनन्द में सदा अपने शुद्ध आत्मा प्रत्यक्ष वर्तता है, एक समय भी वह वह दूर नहीं है।

* धन्य! भावी तीर्थाधिनाथ! *

जिसमें शुद्ध आत्मा समीप है, ऐसी सामायिक के वर्णन में भावी तीर्थाधिनाथ को याद करके मुनिराज कहते हैं कि अहो, तीर्थंकरों को उस भव में, दर्शन और चारित्र दोनों अप्रतिहत होते हैं; ऐसे भावी तीर्थंकर को तथा उन जैसे शुद्धदृष्टिवन्त सर्व जीवों को ज्ञान में-श्रद्धा में-चारित्र में-आनन्द में इस प्रकार सर्व भावों में अपना शुद्ध आत्मा ही समीप है, वही शुद्ध परिणाम में तन्मय वर्तता है। आत्मा स्वयं अपने निर्मल परिणाम में तन्मय-एकाकार वर्तता है, इसलिए वही समीप है, और रागादिभावों में आत्मा तन्मय नहीं वर्तता, इसलिए रागादि से वह दूर है, भिन्न है।

धर्मात्मा को आत्मा की निकटता एक क्षण भी नहीं छूटती... और जहाँ आत्मा समीप है अर्थात् आत्माभिमुखभाव है, वहाँ समता ही है, वीतरागता ही है। ऐसा वीतरागी कार्य, वही नियमसार है, वही मोक्ष का मार्ग है। किसकी समीपता में आनन्द होता है?—तो कहते हैं कि आत्मा स्वयं सहज

आनन्दस्वरूप है, इसलिए अन्तर्मुख होकर आत्मा की समीपता में ही आनन्द का वेदन होता है।

हे जीव! सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट करना हो तो आत्मा के समीप जा; सम्यग्ज्ञान पर्याय प्रगट करना हो तो आत्मा के समीप जा; आनन्दपर्याय प्रगट करना हो तो आत्मा के समीप जा। परम समभावरूप सामायिक करना हो तो आत्मा के समीप जा। भावी तीर्थाधिनाथ एवं सर्व शुद्धदृष्टिवन्त जीव इस प्रकार आत्मा के समीप जाकर, आत्मा को मुख्य रखकर, उसमें एकाग्रता द्वारा श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र और सामायिक प्रगट करते हैं।

अहा, ऐसी शुद्धदृष्टिवान यह भावी तीर्थाधिनाथ शुद्धद्रव्य में अभेद पर्याय द्वारा अभिराम हैं, सुशोभित हैं, शुद्धद्रव्य में अभेद परिणति द्वारा राग का अभाव हुआ है, इसलिए वे वीतरागरूप से सुशोभित हैं—सुन्दर हैं—मनोहर हैं—अभिराम हैं और भव के भय को हरनेवाले हैं। अरे, भगवान आत्मा जहाँ अनुभूति में निकट विराजमान हो, वहाँ भवदु:ख कैसे? और भय कैसा? भगवान आत्मा तो भव के भय को हरनेवाला है।

मैं तो चेतनामय आत्मा हूँ—ऐसी शुद्धदृष्टि धर्मी को कभी छूटती नहीं है। प्रत्येक कार्य के समय, प्रत्येक परिणाम के समय आत्मा की ही ऊर्ध्वता रहती है, आत्मा ही मुख्य रहता है; रागादि से आत्मा ऊर्ध्व रहता है, भिन्न रहता है। ऐसी दृष्टि से शुद्धदृष्टिवन्त जीव शोभायमान है। अहा! ऐसा शुद्धदृष्टिवन्त जीव, वह तो भविष्य का भगवान है; भावी तीर्थाधिनाथ अप्रतिहतभाव से आत्मा को समीप ही रखकर सामायिक द्वारा मोक्ष को साधता है। प्राकृतिक आत्मा आनन्दमय है, उसकी समीपता होने से आनन्द का वेदन करता-करता वह आत्मा मोक्ष में जाता है। किसी धर्मात्मा को अपने धर्मपरिणाम में आत्मा दूर नहीं होता। जितने धर्मपरिणाम हैं, उन सब परिणामों में आत्मा स्वयं तन्मय वर्तता है, आत्मा स्वयं उस स्वरूप है। सम्यग्दर्शन में, ज्ञान में, आनन्द में सर्व परिणाम में सम्पूर्ण आत्मा वर्तता है,

दूर नहीं रहता, पृथक् नहीं रहता। प्रत्येक पर्याय में धर्मी को समतारस का सम्पूर्ण चैतन्यपिण्ड प्रत्यक्ष वर्तता है।—ऐसे धर्मात्मा के भाव में सदा सामायिक है।

धर्मात्मा की ज्ञानदशा में सहज परमानन्दरूपी अमृत की बाढ़ आयी है... सम्पूर्ण ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा स्वयं परम आनन्दरूप से उल्लसित हुआ है; उसमें अब राग-द्वेष कैसे ? अशान्ति कैसी ? ...आत्मा के निकट जाकर महा आनन्द के वेदन में जो पर्याय निमग्न हुई, उसमें अब राग-द्वेषादि विकृति नहीं होती, वह तो परम शान्त है; ऐसे भाव का नाम सामायिक है और वही परमानन्द का पंथ है, वह स्वयं आनन्दरूप है, मोक्ष के परम आनन्द को साधता है।

विकल्प ज्ञान के स्वभाव में हैं ही नहीं, ज्ञान के स्वभाव में आनन्द का पूर है, समभाव है, परन्तु उसमें राग-द्वेषादि विकृति नहीं है। आत्मस्वभाव के अनन्त भावों का समरस ज्ञान में समा जाता है; ऐसा समरसी आत्मा है, उसके अनुभव द्वारा सामायिक प्रगट होती है। पर्याय अन्तर्मुख होकर आत्मा के शुद्धचैतन्यरस के पान में तत्पर है, निर्विकल्पता से चैतन्य का आनन्दरस पीने में ही वह तल्लीन है; अन्य किसी परभाव में वह पर्याय अब नहीं लगती। परम वीतरागी सुख के अमृत का स्वाद जिसने चखा, वह विकार का विषैला स्वाद लेने क्यों जायेगा ? अन्तर्मुख ज्ञान का स्वाद और विकल्प का स्वाद—इन दोनों के बीच अमृत और विष जितना अन्तर है। ज्ञान का स्वाद तो परम शान्तरसमय है और विकल्प का स्वाद आकुल-अशान्त है। धर्मी जीव ज्ञान द्वारा आत्मा के आनन्द का रसपान करता है, वह तीर्थंकरों का अनुयायी है। तीर्थाधिनाथ का जो सुन्दर मार्ग-उसमें वह चल रहा है, सुशोभित हो रहा है।

धन्य हैं तीर्थाधिनाथ और उनका सुन्दर मार्ग!

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 27, अंक 7

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाही प्रवचन

शुद्ध जीवद्रव्य के नाम

चैतन्य भगवान तो अकेले ज्ञान का पिण्ड है, चैतन्यसूर्य है, प्रकाश का प्रकाशक है। सम्पूर्ण दुनिया के सूर्य-चन्द्र का प्रकाश, मणिरत्नों का प्रकाश, हीरा का प्रकाश आदि प्रकाश का प्रकाशक अर्थात् जाननेवाला आत्मा है, परन्तु उनको अपना माननेवाला नहीं है। जड़ को अपना माननेवाला आत्मा आत्मा नहीं; किन्तु अनात्मा है, जड़ है।

आत्मा 'सरवदरसी' है अर्थात् सबको देखनेवाला है। ऐसे सर्वदर्शी आत्मा की दृष्टि करने से पर्याय में सर्वदर्शीपना प्रकट होता है। एक समय में तीनकाल-तीनलोक हैं उन्हें और स्वयं है- ऐसी महासत्ता को देखे- ऐसी शक्ति आत्मा में है- ऐसे आत्मा की दृष्टि करने से मैं सर्वदर्शी हूँ- ऐसी प्रतीति होती है। मैं विकल्प नहीं, एकसमय की पर्याय भी मैं नहीं। मैं आत्मा हूँ- ऐसी प्रतीति होना, वह सम्यग्दर्शन है। अल्पदर्शन की पर्याय जितना भी मैं नहीं, मैं तो सर्वदर्शी स्वभावी वस्तु हूँ।

आत्मा 'सरवज्ञ' है। जैसे शक्कर का मीठा स्वभाव है, नमक का खारा स्वभाव है, अफीम का कड़वा स्वभाव है; वैसे ही आत्मा का सर्वज्ञ स्वभाव है। भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वभावी ही है। उसकी प्रथम प्रतीति सम्यग्दर्शन में होती है कि मैं सर्वज्ञस्वरूप हूँ, पश्चात् उस स्वरूप में एकाग्रता करने से व्यक्त पर्याय में सर्वज्ञता प्रकट होती है। शक्ति थी, वह व्यक्त होती है।

अब इस सर्वज्ञ पर्याय में क्या नहीं ज्ञात हो ?इस जीव की, इस समय ऐसी पर्याय होगी और उसमें ये ही निमित्त होंगे- इसप्रकार तीनकाल तीनलोक सर्वज्ञ के ज्ञान में ज्ञात होता है, क्या उसमें फेरफार हो सकता है ?जैसा ज्ञात हुआ, वैसा ही है। पर्याय क्रमसर होती है और जो होनी हो, वही होती है; तो उसको क्रमबद्ध मानने में क्या हानि है ?प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध परिणमित हो रही है, वह सर्वज्ञ के ज्ञान में बराबर आ जाती

है, वह कोई पर्याय आगे-पीछे नहीं होती।

बहुतों को प्रश्न होता है कि यदि सभी पर्यायें क्रमबद्ध ही होती हैं तो फिर पुरुषार्थ करना ही कहाँ रहा ? हमारे साथ के एक सम्प्रदाय के साधु भी ऐसा कहते थे कि भगवान ने देखा होगा, वैसा होगा अपना पुरुषार्थ कुछ काम का नहीं। भवभ्रमण का नाश जब होना होगा, तभी होगा -ऐसा बारम्बार बोला करते थे। वह दो वर्ष तक तो सुन लिया, फिर एक बार कहा कि ऐसा नहीं है। भगवान तो कहते हैं कि जैसे हम हैं, वैसा तुम अपने को जानो तो सम्यग्दर्शन हुए बिना नहीं रहेगा। जिसकी दृष्टि सर्वज्ञ का स्वीकार करती है कि सर्वज्ञ एक समय में तीनकाल, तीनलोक को जानते है-ऐसी जिसकी पर्याय में प्रतीति आती है, उसको स्वसन्मुख होकर सम्यग्दर्शन हुए बिना नहीं रहता। एक सैकेण्ड में असंख्यातवें भाग में सर्वज्ञ तीनलोक-तीनकाल को जानते हैं ऐसे सर्वज्ञ के ज्ञान का स्वीकार जिसको आता है, उसकी दृष्टि अपने सर्वज्ञस्वभाव पर जाती है। उसको सम्यग्दर्शन हुए बिना नहीं रहता और जिसको सम्यग्दर्शन होता है, उसको अल्पकाल में मोक्ष होता ही है।

बहुत सूक्ष्म विषय है! तत्त्व की दृष्टि बहुत सूक्ष्म है।

एक समय किसको कहते हैं ? आँख बंद करके खोले, इतने में असंख्य समय हो जाते हैं। एक 'क' बोला, इतने में असंख्य समय बीत जाते हैं। तो ऐसे समय का जो छोटे से छोटा भाग वह एक समय है। इतने से काल में सर्वज्ञ के ज्ञान में तीनकाल-तीनलोक ज्ञात हो जाते हैं- ऐसी एक समय की सर्वज्ञ की पर्याय की महान् सामर्थ्य है। उसकी प्रतीति करनेवाला जीव वैसी प्रतीति किसके लक्ष्य से कर सकता है ? अपने द्रव्यस्वभाव में ऐसा सर्वज्ञपद पड़ा है, उसके लक्ष्य से ही सर्वज्ञ की प्रतीति कर सकता है। विकल्प या एक समय की पर्याय के लक्ष्य से सर्वज्ञ की प्रतीति नहीं हो सकती।

वस्तुतः तो इसने धर्म के नाम पर अनन्तकाल से क्रिया ही की है; अतः यह वास्तविक तत्त्व समझना कठिन लगता है, परन्तु समयसार में कहा है न! क्लेश करो तो करो, किन्तु आत्मा तो ज्ञान से प्राप्त होता है, क्रिया से प्राप्त नहीं होता।

सर्वज्ञ सबको जाने, उसमें क्या शेष रहता है ?कुछ भी नहीं। तीनकाल और तीनलोक सर्वज्ञ भगवान को एक समय में जानने में आ जाते हैं। ऐसा ज्ञान कहाँ से प्रकट होता है ?कि अपने सर्वज्ञस्वभाव में से सर्वज्ञपर्याय प्रकट होती है। छोटी पीपल के अन्दर चौसठ पहरी चरपराहट है। वह उसे घोटने से पर्याय में प्रकट होती है। वैसे ही सर्वज्ञ-स्वभाव है, उसकी प्रतीति और उसमें एकाग्रता करने से पर्याय में सर्वज्ञता प्रकट होती है, अत: निश्चित होता है कि सर्वज्ञस्वभाव की तरफ पुरुषार्थ झुके बिना सर्वज्ञ की सच्ची प्रतीति नहीं होती। सर्वज्ञ की प्रतीति करनेवाले के जन्म-मरण नहीं मिटें- ऐसा तीनकाल में भी नहीं बनता। ऐसा जोर संवत् 1872 के साल में अन्दर से आता था। तब तो समयसार या प्रवचनसार आदि कोई शास्त्र भी नहीं मिले थे। प्रवचनसार की 80वीं गाथा में यही भाव विद्यमान है। जो अरिहन्त के द्रव्य, गुण, पर्याय को जानता है; वह अपने द्रव्य, गुण, पर्याय को जानता है और उसका मोह नष्ट होता है।

सर्वज्ञ की प्रतीति हो और जन्म-मरण नहीं मिटे यह बात हम सुनने को भी तैयार नहीं हैं- ऐसा उससमय गुरुभाई से कह दिया था। ऐसा सम्प्रदाय हमें नहीं चाहिए। एक समय में तीनकाल-तीनलोक को जाने- ऐसे सर्वज्ञ की श्रद्धा हो और जन्म-मरण नहीं मिटे- ऐसा तीनकाल में नहीं बन सकता।

लोगों को, अन्दर में आत्मा क्या वस्तु है ?यह शोधने की दरकार नहीं है। एक तो संसार में व्यापार के पाप में बीस-बीस घण्टे अटके रहते हैं, उसमें एकाध घण्टा धर्म सुनने जायें तो वहाँ पुण्य से और राग से तुम्हारा कल्याण होगा- ऐसा सुनकर उसे ही धर्म मान लेते हैं।

यहाँ तो नाटक समयसार में जीवतत्त्व का वर्णन चल रहा है। पूर्वरंग में ही जीवतत्त्व की पहचान कराई है कि भगवान शुद्धजीव तो सर्वज्ञस्वभावी है। वह रागवाला, शरीरवाला, पुण्यवाला अथवा अल्पज्ञतावाला नहीं है। भगवान! यह राग तेरा नहीं है, शरीर तेरा नहीं है और अल्पज्ञता जितना ही तू नहीं है, तू तो सर्वज्ञस्वभावी है। एक समय में तीनकाल-तीनलोक को एकसाथ जाने- ऐसी

शक्ति लेकर जो बैठा है, वह भगवान आत्मा है। अहा हा..।

अभी तो जिसको यह बात सुनने को भी नहीं मिलती, वह कब विचारे और कब परिणमन करे ? व्यापार के रस के आगे जीवन चला जाता है और अन्त में जब शरीर कमजोर पड़ जाता है, आँख में से पानी आवे, कान से सुने नहीं, बैठा जावे नहीं; तब कहता है कि मुझसे कुछ नहीं होता। अरे भाई ! यह धर्म का काम तो पहले ही कर लेने जैसा है। छहढाला में दौलतरामजी लिखते हैं न !

इमि जानि आलस हानि साहस ठानि, यह सिख आदरौ।
जबलों न रोग जरा गहै, तबलौं झटिति निज हित करो।।

रोग, वृद्धावस्था और मरण नहीं आवे, उसके पूर्व ही शीघ्र अपना काम करले। अभी नही.. अभी नहीं ऐसा करेगा तो कभी नहीं होगा और मरकर कौआ-कुत्ता बन जायेगा। सारी जिन्दगी माया-कपट की हो वह मरकर तिरछे-गाय, भैंस, कुत्ता, चूहा, बिल्ली आदि तिर्यन्च में अवतरित होता है। भगवान कहते हैं कि जिसने पूर्व भव में माया, कपट, कुटिलता और अभिमान किया है, उसका आत्मा तो आड़ा गया ही; किन्तु शरीर भी आड़ा ही मिलेगा।

अहा ! जो आत्मा के एक स्वभाव का भी स्वीकार करता है, उसे सब स्वीकार हो जाता है। 'मैं तो सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा हूँ', मेरा तो सबको जानने का स्वभाव है। कोई भी विकल्प करना या परद्रव्य का कार्य करना या पर में से कुछ लेना, वह मेरा स्वभाव नहीं है।

अरे ! जिसने रुचिपूर्वक संसार का सेवन किया हो, उसे यह सुनते हुए करंट लगता है, किन्तु करंट लगे तो उसे विचारने का अवकाश है; किन्तु यह तो वास्तविक तड़प भी पैदा नहीं होने देता।

एक समय अर्थात् सैकेण्ड के असंख्यातवें भाग में भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है, उसमे शंका का स्थान कहाँ है ? मेरा कल्याण कब होगा- ऐसा नहीं, मैं स्वयं ही कल्याण स्वरूप हूँ- ऐसी दृष्टि हुई, उसने कल्याण अपने अधिकार में कर लिया। जिसने अन्तरसन्मुख होकर कल्याणमूर्ति, वीतरागमूर्ति सर्वज्ञस्वभाव की प्रतीति की, उसने कल्याण अपने कब्जे में कर लिया।

आत्मा सिद्ध है। बनारसीदासजी ने पूर्व में 19वें काव्य में सिद्धसमान आत्मा का वर्णन किया है–

चेतनरूप अनूप अमूरति, सिद्धसमान सदा पद मेरौ।
मोह महातम आतम अंग, कियो परसंग महातम घेरौ।।

अर्थात् मैं सदा सिद्धसमान होने पर भी पर्याय में राग और विकल्प को निज मानकर मैंने महामोह का अंधकार खड़ा किया है; परन्तु मैं तो सदा सिद्धसमान हूँ।

ग्यानकला उपजी अब मोही, कहौ गुन नाटक आगम केरौ।
जासु प्रसाद सधै शिवमारग, वेगि मिटे भववास बसेरौ।।

मैं सिद्ध ही हूँ। द्रव्य से, स्वभाव से, शक्ति से मैं सिद्ध ही हूँ। यही मेरी दृष्टि का विषय है। शक्ति में सिद्धपद न हो तो व्यक्त कहाँ से हो ? स्वभाव से मैं सदा सिद्ध ही हूँ। यह मेरा सिद्धस्वरूप ही दृष्टि का विषय है। राग और अल्पज्ञान दृष्टि का विषय नहीं।

भगवान आत्मा 'स्वामी' है। स्व जो शुद्ध आनन्दस्वरूप मेरा धन, उसका मैं स्वामी हूँ। मैं अनन्तगुणों का स्वामी हूँ। मैं पत्नि का पति नहीं, लक्ष्मी का पति–लक्ष्मीपति नहीं, मैं नरपति अर्थात् राजा नहीं हूँ।

मैं चैतन्य होकर जड़ का स्वामी कैसे होऊँ ? मैं तो मेरे ज्ञान, आनन्द आदि अनन्त गुणों का स्वामी हूँ। मैं कोई राग का, पुण्य का या पर का स्वामी नहीं हूँ।

जैसे कन्या की सगाई होते ही उसकी दृष्टि बदल जाती है, उसको अब पति और उसकी सम्पत्ति अपनेरूप लगने लगती है, पिता की सम्पत्ति का स्वामीपना दृष्टि में से छूट जाता है, वैसे ही जहाँ जीव को स्वभाव का लक्ष्य होता है, वहाँ दृष्टि बदल जाती है। अहो ! मैं तो मेरे अनन्तज्ञान और आनन्द का स्वामी हूँ। इस राग और पुण्य का स्वामी मैं नहीं हूँ। ऐसी उसकी दृष्टि पलट जाती है। दृष्टि के पलटने में देर ही कितनी ?

ऐसी महान उत्कृष्ट बाते हैं भाई ! कोई ऐसा कहता है कि ऊँची है इसलिए पचती नहीं है, तो क्या तुझे सत्य पचता नहीं है तो असत्य पचाना है ? असत्य

पचायेगा तो जो चौरासी का चक्कर अनादि से चालू है, वह चलता ही रहेगा। देखो न! ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती कि जिसको यहाँ छह खण्ड का राज्य था, सोलह हजार देव जिसकी सेवा करते थे, बत्तीस हजार राजा चँवर ढोरते थे, वही चक्रवर्ती मरकर दूसरे ही क्षण सातवें नरक में नारकी बन गया। संयोगी वस्तु हो उसका संयोग कब तक रहेगा?उसका वियोग तो निश्चित है। ममता करके पाप का भार बढ़ाया तो उसके फल में नीचे नरक में चला गया।

यहाँ कहते हैं कि तुझमें बाहर की कोई वस्तु ही नहीं, पुण्य-पाप तेरे में नहीं। तू तो अपने ज्ञान, आनन्द, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, सिद्धसमान पद का स्वामी है। ऐसे स्वामीपने की दृष्टि हो, उसका नाम धर्म हैं बाकी सब तो धर्म के नाम पर बातें है।

आत्मा 'शिव' है। शिव अर्थात् शंकर नहीं, किन्तु शिव अर्थात् आत्मा कल्याणमूर्ति है। जिसमें कोई उपद्रव ही नहीं, उपद्रव अर्थात् दु:ख की जिसमें गंध भी नहीं -ऐसा आत्मा अनादि-अनन्त शिव है, सुख का धाम है।

आत्मा अपने स्वरूप धन का स्वामी है, अत: आत्मा को 'धनी' कहा है। अपने ज्ञान, आनन्द आदि अनन्तगुण, वे अपना धन हैं उसका आत्मा धनी है; पर का धनी (मालिक) होने जाता है, वह तो अनात्मा है, जड़ है, अज्ञानी है।

आत्मा 'नाथ' है। जो हो, उसकी रक्षा करे और जो नहीं हो, उसको प्राप्त करावे; उसको नाथ कहते हैं। भगवान आत्मा अपने स्वरूपधन की प्रतीतिरूप पर्याय प्रकट होती हैं, उसकी रक्षा करता है और अप्रकट शुद्धपर्याय को प्रकटाता है, अत: नाथ है। योग और क्षेम के करनेवाले को नाथ कहते हैं।

अपना आत्मा ही अपना ईश्वर है। तीनकाल में उसके समान कोई दूसरा ईश्वर नहीं; अत: आत्मा 'ईस' है। आत्मा ही जगदीश है अर्थात् कि तीनकाल-तीनलोक का जाननेवाला है।

आत्मा 'भगवान' है। भग अर्थात् लक्ष्मी और वान अर्थात् वाला। जो अपने ज्ञान-आनन्द की लक्ष्मीवाला है, लक्ष्मीरूप है; अत: भगवान है। 'मैं ही भगवान हूँ'- ऐसी अपनी भगवानपने की दृष्टि करने से आत्मा पर्याय में साक्षात् भगवान होता है।।36।।

क्रमश:

[नियमसार, कलश 199 पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

मैं अपने चैतन्यसुख का अनुभव करता हूँ

अनन्त चैतन्यशक्ति से भरपूर अपनी प्रभुता को भूलकर जीव संसार की चार गतियों में जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ शुभराग के फलरूप दु:ख का ही अनुभव किया। अरे रे, आत्मा तो चैतन्यस्वरूप विशुद्ध सुखधाम है; उसको भूलकर मैंने अभी तक विषवृक्ष के फल की भाँति दु:ख का ही अनुभव किया परन्तु अब मैं उस भूल को छोड़ता हूँ और अपने शुद्ध चैतन्यसुख का अनुभव करता हूँ। मेरी अनुभूति में भव के दु:ख का अभाव है। चैतन्यस्वभाव के अमृत को भूलकर चार गति का भाव, वह विषवृक्ष है, उसका फल दु:ख ही दु:ख है—चाहे स्वर्ग में हो, वहाँ भी जीव अज्ञानभाव से दु:खी है। परन्तु जहाँ चैतन्यशक्ति का अनुभव हुआ, स्वयं ने अपनी प्रभुता देखी, वहाँ अपने आत्मा में से ही अनुपम अतीन्द्रिय रागरहित का महान सुख उत्पन्न हुआ, उस शुद्ध सुख का ही मैं अनुभव करता हूँ। देखो, यह धर्मात्मा का अनुभव!

भाई! तेरे सुख की उत्पत्ति तो आत्मा में से होगी कि बाह्य में से आयेगी? अरिहन्तों को जो केवलज्ञानादि अनन्त सुख से भरपूर लक्ष्मी प्रगट हुई है, वह कहाँ से आयी? राग तो उन्हें नहीं है, विषयों की ओर लक्ष्य नहीं है, अन्तर के चैतन्य के वेदन में से ही परम सुख आता है। ऐसे चैतन्य के वेदन से हटकर अन्य की ओर लक्ष्य जाने से जो वेदन होता है, वह तो विषफल की भाँति दु:ख है; ऐसे समस्त पराश्रित भाव को दु:खरूप जानकर धर्मी छोड़ देता है तथा अन्तर्मुख अपने चैतन्यतत्त्व के वेदन द्वारा आत्मा के शुद्ध सुख का अनुभव करता है। ऐसे अनुभव का नाम समाधि है, उसमें शान्ति है; वह निजगृह में निवास है।

अरे जीव! तू अनन्त काल से शान्ति के लिये तरस रहा है तो अपनी

प्यास बुझाने के लिये अन्तर्मुख होकर चैतन्यसरोवर के अतीन्द्रियरस का स्वाद ले। तेरे अन्तर में ही मीठे मधुर आनन्दरस का सरोवर भरा हुआ है, उसमें उतरकर आनन्दरस नहीं पीता और मृगजल की भाँति बाह्य के शुभ-अशुभ विषयों की ओर दौड़कर तू दु:खी हो रहा है। परन्तु तेरा आत्मा उस शुभ-अशुभ रागस्वरूप नहीं है, तेरा आत्मा तो सुख के चैतन्य से भरा हुआ है। अपनी रुचि को परभाव से हटाकर अपने चैतन्य में लगा। आनन्दरस का धाम तू स्वयं ही है। आनन्द-ज्ञान-शान्ति ऐसे अनन्त रस तुझमें भरे हैं। अन्तर में एक बार दृष्टि तो कर। इस शरीर के स्थान पर ही (परन्तु शरीर से बिल्कुल भिन्न) तू स्वयं अन्तर में चैतन्यरस से भरपूर है, राग से भी तेरा चैतन्यरस भिन्न है। इस प्रकार चैतन्यस्वरूप के सुख को तू अनुभव में ले।

बस, अब मैंने अपना पक्ष बदल दिया है; विभाव से विमुख होकर मैं अपने स्वभाव के सन्मुख हुआ हूँ। मेरा चैतन्यस्वभाव अतीन्द्रिय सुख की सुगन्ध से भरपूर है, परभाव की उसमें गन्ध भी नहीं है। अनादि से परभाव का पक्ष करके दु:खी हुआ था, अब परभाव का पक्ष छोड़कर, अपने चैतन्यस्वभाव के पक्ष में, मैं अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करता हूँ। आत्मा के अनुभव में तो आनन्द का झरना झरता है।

आत्मा में से क्या निकलता है ?—आत्मा में से तो चैतन्यसुख निकलता है। ध्रुवस्वभाव में परिणति एकाग्र होने से वह पर्याय अतीन्द्रिय आनन्दरूप हो गई है। जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द नहीं आता, वह ज्ञान नहीं है। अन्तर्मुख ज्ञान में आत्मा के अनन्त रस भरे हैं, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का समावेश है, उसमें परम आनन्द है। ऐसे आनन्द के वेदनसहित आत्मा का ज्ञान प्रगट होता है। आनन्दरहित ज्ञान, वह सच्चा ज्ञान नहीं है।

भाई, तुझे सुखी होना है ना ? सुख की उत्पत्ति तो तेरे आत्मा से होती है, इसलिए उपयोग को आत्मा में एकाग्र कर। चैतन्यसरोवर परम आनन्द से भरपूर है; सिद्धभगवन्तों ने जो आनन्द प्रगट किया है, वह आनन्द इस चैतन्यसरोवर में भरा हुआ है; उस चैतन्यसरोवर को छोड़कर बाह्य में

दौड़ेगा तो तुझे कहीं सच्ची शान्ति का जल नहीं मिलेगा। सच्ची शान्ति के लिये अन्तर में अपने चैतन्यसरोवर में डुबकी लगा।

चैतन्यसुख का अनुभव करते ही ज्ञानी को ऐसा लगता है कि अहो! मेरा ऐसा अचिन्त्य परम आनन्द मुझमें ही होने पर अभी तक अपने सुख को भूलकर मैं दु:खी हुआ था। अहो! अब तो चैतन्यभगवान निजात्मगुणों के वैभव सहित अपने अन्तर में स्फुरायमान हुआ है—सम्यग्दर्शन की अपनी अनुभूति में आत्मसम्पत्ति ही प्रगट हुई है; मेरी सम्पत्ति मैंने अपने में देखी है; उसके परम आनन्द का अनुभव करता हुआ मैं अब विभाव के विषफल का उपयोग नहीं करता, उसको अपने से भिन्न जानता हूँ।

अहो, ऐसी चैतन्यसम्पत्ति! वह धर्मात्मा की अनुभूति का ही विषय है; राग का यह विषय नहीं; राग से पार ऐसी जो निर्विकल्प समाधि, उसमें अपनी चैतन्यसम्पत्ति को ध्येय बनाने पर सम्यग्दर्शन तथा परम आनन्द प्रगट होता है। पूर्व काल में एक समय भी ऐसी चैतन्यसम्पत्ति को मैंने नहीं जाना था; परन्तु अब वह चैतन्यसम्पत्ति मेरी निर्विकल्प समाधि में प्रगट हुई है, साक्षात् अनुभव में आ गयी है।

अहा, इस चैतन्यसम्पत्ति के सामने जगत की किसी भी सम्पत्ति का मूल्य नहीं है। जिसने अन्तर की अनुभूति द्वारा ऐसा चैतन्यसम्पत्तिवान आत्मा प्राप्त किया, वही सच्चा लक्ष्मीवान है; जो बाह्य के संयोगों से बड़ाई लेना चाहें, वे तो सब दरिद्र हैं। भगवान! तू दरिद्र नहीं, दीन नहीं, तू तो चैतन्यसम्पत्ति से भरपूर भगवान है। सुख की सम्पत्ति तो तुझमें ही भरी हुई है। ज्ञान को अन्तर्मुख करके अपने स्वरूप की समाधि द्वारा उसे जान... तेरा आनन्दमय आत्मवैभव तीन लोक में सर्वश्रेष्ठ है, वह तेरी समाधि का विषय है–इसलिए अपने अन्तर्मुख उपयोग में ही वह प्राप्त होता है; इसके अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से उसकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिए अन्तर के उपयोग द्वारा सुख-सम्पत्ति से भरपूर अपने 'चैतन्यधाम' में आनन्द से निवास कर।●●

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 27, अंक 7

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव
श्री कनकनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्तीदेव

सिद्धान्त शास्त्र के ज्ञाता भगवान आचार्य कनकनन्दि मूलत: सिद्धान्त-शास्त्र के मर्मज्ञ ऐसे देवेन्द्रनन्दिजी के शिष्य थे। तत्पश्चात् आप सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्यदेव इन्द्रनन्दि के शिष्य व भगवान नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीदेव के सहधर्मा थे। आप भी भगवान नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीदेव समान ही समादरणीय हैं।

वरइंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयल सिद्धंतं।
सिरिकणयणंदि गुरुणा, सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं॥

अर्थ :- आचार्यों में श्रेष्ठ ऐसे श्री इन्द्रनंदि 'गुरु' के पास समस्त सिद्धान्त को सुनकर श्री कनकनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्ती गुरु ने इस सत्त्वस्थान को सम्यक् रीति से कहा है।

इस भाँति उक्त गो. कर्मकाण्ड गा. 396से यह अति स्पष्ट है, कि आप भी सिद्धान्त ग्रन्थों के पारगामी थे। इस गाथा में आचार्य कनकनन्दि के पूर्व 'गुरु' शब्द का प्रयोग, यह सूचित करता है, कि आचार्य नेमिचन्द्रदेव ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड की रचना या तो आचार्य कनकनन्दि से अध्ययन करके रची हो या आचार्य कनकनन्दि अपने सहधर्मियों में 'गुरु' नाम से प्रसिद्ध होंगे या आचार्य कनकनन्दि भी उनके गुरु रहे हों अर्थात् वे वय, दीक्षा आदि की दृष्टि से 'गुरु' हों। जो कुछ भी हो आपका आचार्य नेमिचन्द्रजी की नजरों में सम्माननीय स्थान रहा है, जो कि भगवान नेमिचन्द्र आचार्यदेव के गोम्मटसार कर्मकाण्ड ग्रन्थ तक में झलक आया है।

आपका एक ही ग्रन्थ 48से 51 गाथा प्रमाण 'विस्तरसत्त्वत्रिभंगी' नामक मात्र दो प्रतियाँ कागज पर लिखी 'जैन सिद्धान्त भवन' आरा में है। उसमें से हू-ब-हू 40 गाथा गोम्मटसार कर्मकाण्ड की गाथा 358से 397 ही हैं। उसमें उक्त गाथा 396भी आ गयी। इस पर से ऐसा ज्ञात होता है कि आचार्य कनकनन्दि ने इतना छोटा सा ग्रन्थ नहीं लिखा होगा, परन्तु आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती को गोम्मटसार कर्मकाण्ड लिखने में सहयोग हेतु, यह सत्त्व त्रिभंगी प्रकरण लिखा होगा—जो गोम्मटसार कर्मकाण्ड की गाथा 358से 397 बन गयी व बाद में स्वयं ने अल्प गाथाएँ जोड़कर उसे एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का रूप प्रदान किया हो।

इस पर से भी स्पष्ट है, कि आप अपने समय के प्रसिद्ध आचार्य थे।

इतिहासकारों के अनुसार आपका काल करीब ई.स. 939 माना गया है।

आचार्यदेव कनकनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तीदेव भगवन्त को कोटि-कोटि वन्दन।

समाचार-दर्शन

वात्सल्यपर्व सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मंगलायतन : तीर्थधाम मंगलायतन में विशेष उत्साह से पूजन-भक्तिपूर्वक वात्सल्यपर्व की पूजन का आयोजन किया गया। तत्पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का सीडी प्रवचन और श्री पवन जैन का मांगलिक उद्बोधन उपस्थित मंगलायतन में उपस्थित परिवारीजनों को प्राप्त हुआ। सायंकालीन भक्ति-वीतरागी देव -शास्त्र-गुरु भगवन्तों की भक्ति का संगीतमय आयोजन हुआ और तत्पश्चात् पण्डित सचिन जैन का 'वात्सल्य पर्व का औचित्य' विषय पर ऑनलाईन प्रसारण हुआ।

तीर्थधाम मंगलायतन द्वारा आयोजित

अन्तर्राष्ट्रीय 'पवयणभक्ति' सेमिनार सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मंगल प्रभावनायोग में जिनमुखोद्भूत तत्त्व की चिर-प्रभावना निरत तीर्थधाम मंगलायतन द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय I-सेमिनार पवयण भक्ति। The Soul Talks का आयोजन दिनांक 15-16-17 अगस्त 2020 को किया गया। जिसमें यूएसए, कनाडा, लन्दन, दुबई एवं भारत के मुमुक्षुजनों ने तत्त्व लाभ लिया।

यह एक अपने आप में ही अनूठा एवं अपूर्व प्रयोग था क्योंकि इस शिविर का संचालन तीर्थधाम के निर्देशन में द सोलिट्यूड एवं एसोसिएशन ऑफ तीर्थधाम मंगलायतन एलुमनी के संयोजन में तीर्थधाम मंगलायतन के आँगन में ही पल्लवित मंगलार्थियों द्वारा किया गया।

जिनागम के मूलभूत सिद्धान्तों को सरल-सुलभ भाषा में जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से छह सत्रों में विभाजित यह सेमिनार विश्व-प्रसिद्ध विशेषज्ञ विद्वानों के निर्देशन एवं अध्यक्षता में छह मंगलार्थी विद्वानों के आधुनिक शैली के व्याख्यानों के साथ सम्पन्न हुए, जिसे आदरणीय बालब्रह्मचारी पण्डित हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़; पण्डित अभयकुमार जैन, देवलाली; पण्डित देवेन्द्र जैन, बिजौलियां; पण्डित (डॉ.) संजीव गोधा, जयपुर; पण्डित शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल, जयपुर एवं डॉ. नितेश शाह, दुबई ने अपनी गरिमापूर्ण उपस्थिति एवं मार्गदर्शन से गौरवान्वित किया। मंगलार्थी वक्ता ज्ञायक जैन, बैंगलोर; अनुभव जैन, पुणे; शालीन जैन, मुम्बई; अगम जैन, उदयपुर; विराग जैन, कोटा एवं अनुभव जैन, करेली द्वारा सरल-सुबोध आधुनिक शैली में तत्त्वज्ञान प्रस्तुत किया गया।

शिविर में न सिर्फ तत्त्वचर्चा अपितु पुराने कवियों के भजन एवं जिनवाणी

भक्तियाँ एवं आचार्य कुन्दकुन्ददेव द्वारा रचित श्री पंच महागुरु प्राकृतभक्ति का अपूर्व लाभ भी सभी मुमुक्षुओं ने प्राप्त किया।

गुरुदेवश्री का साक्षात् संग पानेवाले आदरणीय बज्जूभाईजी द्वारा इस शिविर का मांगलिक किया गया एवं विदुषी मीनाबेन सोनगढ़ द्वारा गुरुदेव के प्रांजल-उपकार स्मरण एवं आदरणीय पवनजी जैन मंगलायतन द्वारा किये गये आभार प्रदर्शन द्वारा आयोजन का समापन हुआ। जूम एवं यू-ट्यूब पर प्रसारित होनेवाले इस अनूठे आयोजन से देश-विदेश में स्थित हजारों मुमुक्षु लाभान्वित हुए।

क्रमबद्धपर्याय संगोष्ठी सानन्द सम्पन्न

मकरोनियां - श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल मकरोनिया, सागर एवं सर्वोदय अहिंसा ट्रस्ट जयपुर के संयुक्त तत्त्वावधान में दिनांक 8 से 11 अगस्त 2020 तक डॉ. राकेशजी शास्त्री, नागपुर के विशिष्ट संयोजकत्व में क्रमबद्धपर्याय विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन हुआ।

इस अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री के क्रमबद्धपर्याय (समयसार गाथा 308-311) पर तथा बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' कोटा के सीडी प्रवचनों के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर; ब्रह्मचारी रविन्द्रजी आत्मन (ऑडियो); पण्डित अभयजी देवलाली; डॉ. शान्ति पाटील, जयपुर; पण्डित प्रदीप झांझरी, उज्जैन; डॉ. संजीवकुमार गोधा, डॉ. अरुण शास्त्री, जयपुर; पण्डित विपिन शास्त्री, मुम्बई; डॉ. मनीष जैन, मेरठ आदि विद्वानों द्वारा प्रवचनों का लाभ मिला। गोष्ठी में लगभग 60 प्रतिष्ठित विद्वानों द्वारा क्रमबद्ध विषय के अनेक पहलुओं पर सारगर्भित वक्तव्य दिया गया।

इस अवसर पर आठ सत्रों में आयोजित अध्यक्ष, मुख्य अतिथि, विशेष अतिथि के रूप में श्री बसन्तभाई दोशी, मुम्बई; श्री अजितप्रसाद जैन, दिल्ली; श्री अजित जैन, बड़ौदा; श्री प्रेमचन्द बजाज, कोटा; श्री परमात्मप्रकाश भारिल्ल, श्री शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल, जयपुर; पण्डित जे.पी. दोशी, मुम्बई; ब्रह्मचारी हेमचन्दजी हेम, देवलाली; श्री सुनील सर्राफ, सागर; डॉ. शक्ति जैन, सागर; श्री बीनूभाई शाह, मुम्बई; ब्रह्मचारी अमितभैया, विदिशा; पण्डित प्रकाश छाबड़ा, इन्दौर; इंजी. नेमिचन्दजी, ललितपुर; श्री अशोक जैन, जबलपुर; पण्डित संजय सेठी, जयपुर; डॉ. (श्रीमती) स्वर्णलता जैन, नागपुर इत्यादि महानुभाव उपस्थित थे।

गोष्ठी में ऐनी जैन, जयपुर; अनुज्ञा जैन, करेली; विदुषी अनु शास्त्री, दलपतपुर आदि ने मंगलाचरण किया। संचालन अरुण मोदी, सागर; विदुषी दीक्षा, आरोन; आलोक शास्त्री, कारंजा; शाश्वत प्रज्ञा जैन, दिव्यांश शास्त्री, अलवर; विदुषी प्रज्ञा जैन,

देवलाली; संयम शास्त्री, नागपुर आदि ने किया। पूजन-विधान, सायंकालीन भक्ति का कार्यक्रम पण्डित समकितद्वय शास्त्री खानियांधाना, सागर द्वारा किया गया। कार्यक्रम का प्रसारण संजय शास्त्री सर्वोदय अहिंसा के यूट्यूब चैनल पर हुआ। जिसके संचालन में विनीत शास्त्री, हटा; वीतराग शास्त्री, नागपुर एवं संजय शास्त्री राऊत, औरंगाबाद का सहयोग प्राप्त हुआ। सम्पूर्ण कार्यक्रम के आमन्त्रणकर्ता श्री विनोदकुमार, प्रमोदकुमार, सुनीलकुमार मोदी परिवार दलपतपुर सागर थे।

दशलक्षण महापर्व प्रारम्भ

तीर्थधाम मंगलायतन : 23 अगस्त से 1 सितम्बर 2020 उत्साहपूर्वक मनाया जायेगा। जिसमें प्रात:कालीन प्रक्षाल-पूजन विधान, पूज्य गुरुदेवश्री के भवतापहारी प्रवचन, और उपस्थित विद्वानों द्वारा शास्त्रस्वाध्याय, कक्षा, चर्चा और मंगलमय भक्ति आदि के द्वारा उपस्थित साधर्मीजन सम्पूर्ण कार्यक्रमों का लाभ लेंगे।

वैराग्यसमाचार

भावनगर : श्री हीरालालजी काला शान्तपरिणामों से देहपरिवर्तन हो गया है। आप पूज्य गुरुदेवश्री से प्राप्त तत्त्वज्ञान से ओतप्रोत थे तथा उसके प्रचार-प्रसार में संलग्न थे। तीर्थधाम मंगलायतन से उसके उद्भव से ही जुड़े थे। आप कई बार तीर्थधाम मंगलायतन पधारेथे तथा आपने श्री पवन जैन के साथ धार्मिक शिविरों हेतु कई यात्राएँ की थीं। आपके निधन से तीर्थधाम मंगलायतन अपूरणीय क्षति का अनुभव कर रहा है।

आगरा : श्री रतनलालजी बैनाड़ा का शान्तपरिणामों से देहपरिवर्तन हो गया है। आप जैनजगत के मर्मज्ञ विद्वान थे। तीर्थधाम मंगलायतन के प्रति आपका विशेष स्नेह था। आप कई बार तीर्थधाम मंगलायतन पधारेथे। आपके निधन से तीर्थधाम मंगलायतन अपूरणीय क्षति का अनुभव कर रहा है।

बण्डा : श्री राकेश जैन का शान्तपरिणामों से देहपरिवर्तन हो गया है। आप पण्डित धर्मेन्द्र शास्त्री के पिताश्री थे। देव-शास्त्र-गुरु के प्रति विशेष लगाव था एवं आप उत्साही कार्यकर्ता थे।

सतना : श्री सुभाषचन्द्र जैन का शारीरिक अस्वस्थता के कारण देहपरिवर्तन हो गया है। आपका देव-शास्त्र-गुरु के प्रति विशेष लगाव था।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हों—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

श्रीमान सद्धर्मानुरागी बन्धुवर,

सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

आशा है आराधना-प्रभावनापूर्वक आप सकुशल होंगे।

वीतरागी जिनशासन के गौरवमयी परम्परा के सूत्रधार पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावनायोग में निर्मित आपका अपना **तीर्थधाम मङ्गलायतन** सत्रह वर्षों से, सुचारुरूप से, अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर गतिमान है।

वर्तमान काल की स्थिति को देखते हुए, अब **मङ्गलायतन** का जीर्णोद्धार एवं अनेक प्रभावना के कार्य, जैसे-भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, भोजनशाला, **मङ्गलायतन** पत्रिका प्रकाशन आदि कार्यों को सुचारू रूप से भी व्यवस्था एवं गति प्रदान करना है। यह कार्य आपके सहयोग के बिना, सम्भव नहीं हैं। इसके लिए हमने एक योजना बनायी है, जिसमें आपको एक छोटी राशि प्रतिमाह दानस्वरूप प्रदान करनी होगी। इस योजना का नाम - **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** रखा गया है। हम आपको इस महत्त्वपूर्ण योजना में सम्मानित सदस्य के रूप में शामिल करना चाहते है। **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आपको प्रतिमाह, मात्र एक हजार रुपये दानस्वरूप देने हैं।

मङ्गलायतन का प्रतिमाह का खर्च, लगभग दस लाख रुपये है। इस योजना के माध्यम से आप हमें प्रतिमाह 1,000 (प्रतिवर्ष 1000X12=12,000) रुपये दानस्वरूप देंगे। भारत सरकार ने **मङ्गलायतन** को किसी भी रूप में दी जानेवाली प्रत्येक दानराशि पर, आयकर अधिनियम की धारा 80जी के अन्तर्गत छूट प्रदान की है। आप इस महान कार्य में सहभागिता देकर, स्व-पर का उपकार करें।

आप इसमें स्वयं एवं अपने परिवारीजन, इष्टमित्र आदि को भी सदस्य बनने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। साथ ही **तीर्थधाम मङ्गलायतन** द्वारा संचालित होनेवाले कार्यक्रमों में, आपकी सहभागिता, हमें प्राप्त होगी।

आप यथाशीघ्र पधारकर यहाँ विराजित जिनबिम्बों के दर्शन एवं यहाँ वीतरागमयी वातावरण का लाभ लेवें - ऐसी हमारी भावना है।

हार्दिक धन्यवाद एवं जयजिनेन्द्र सहित

अजितप्रसाद जैन	**स्वप्निल जैन**	**सुधीर शास्त्री**
अध्यक्ष	महामन्त्री	निदेशक

सम्पर्क-सूत्र : 9756633800 (सुधीर शास्त्री)
email - info@mangalayatan.com

मङ्गल वात्सल्य-निधि

सदस्यता फार्म

नाम .....

पता .....

..... पिन कोड .....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

मैं **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** योजना की आजीवन सदस्यता स्वीकार करता हूँ, मैं प्रतिमाह एक हजार रुपये **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आजीवन जमा करवाता रहूँगा।

हस्ताक्षर

यह राशि आप प्रतिमाह दिनांक पहली से दस तक निम्न प्रकार से हमें भेज सकते हैं -

1. बैंक द्वारा

NAME	: SHRI ADINATH KUNDKUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	: HDFC BANK
BRANCH	: RAMGHAT ROAD, ALIGARH
A/C. NO.	: 50100263980712
RTGS/NEFTS IFS CODE	: HDFC0000380
PAN NO.	: AABTA0995P

2. Online : http://www.mangalayatan.com/online-donation/
3. ECS : Auto Debit Form के माध्यम से।

नवीन प्रकाशन - मोक्षमार्गप्रकाशक

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा प्रथम बार **आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा विरचित मोक्षमार्गप्रकाशक की मूल हस्तलिखित प्रति से पुनः मिलान करके, आधुनिक खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ है।** जो मुमुक्षु संस्था, समाज स्वाध्याय हेतु मंगाना चाहते हैं। वे डाकखर्च देकर, नि:शुल्क मंगा सकते हैं।

छहढाला (हिन्दी) नवीन संस्करण **सशुल्क**

ग्रन्थ मँगाने का पता— प्रकाशन विभाग, तीर्थधाम मङ्गलायतन,
अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

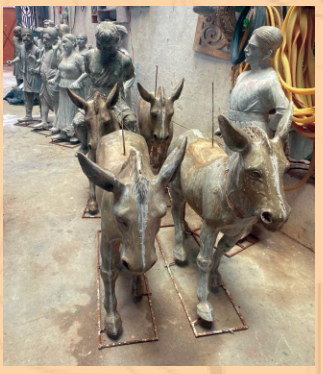
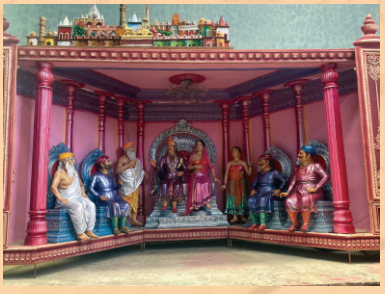

तीर्थधाम चिदायतन : हस्तिनापुर में नवनिर्माणाधीन 151 फीट उन्नत श्री शान्तिनाथ जिनमन्दिर एवं 108 फीट मानस्तम्भ मन्दिर का निर्माण कार्य हेतु सुप्रसिद्ध निर्माणकर्ता श्री हेमन्त अग्रवाल, दिल्ली को अनुबन्ध कर लिया गया है। निर्माणस्थल पर पाईलिंग का कार्य द्रुतगति से चल रहा है। अगले 15 दिनों में मूल मन्दिर का निर्माण कार्य गति प्राप्त कर लेगा। मङ्गलायतन स्थित आर्जव हाउस में उनका मङ्गलायतन परिवार द्वारा स्वागत किया गया।

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मुनिराज : प्रचुर समाधिसुख के प्रति उत्सुक

मुनिराज समाधिपरिणत तो हैं परन्तु सनातन शुद्ध निज ज्ञायकद्रव्य सामान्य का अवलम्बन लेकर विशेष-विशेष समाधिसुख प्राप्त करने के लिये वे अति आतुर हैं। जैसे, पाँच लाख रुपये का स्वामी, पच्चीस लाख कमाने की भावना करता है; इसी प्रकार मुनिराज, निज ज्ञायक के उग्र अवलम्बन से प्रचुर समाधिसुख प्रगट करने के लिये अति उत्सुक हैं।

(वचनामृत-प्रवचन, भाग-४, पृष्ठ २०४)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com